Sanvahak (संवाहक)

A Peer Reviewed, Multidisciplinary (All Subjects) & Multilingual (All Languages) Quarterly Research journal

ISSN : 3108-1347 (Online)

Vol.-1; Issue-1 (July-Sept.) 2025

Page No.- 13-16

©2025 **Sanvahak**

https:// sanvahak.gyanvividha.com

Author's :

देवांश जैन

(स्नातक द्वितीय वर्ष - दिल्ली विश्वविद्यालय), स्थाई पता- सेक्टर 19 (1) , हुड्डा , मकान नं-75, कैथल (हरियाणा) 136027.

Corresponding Author :

देवांश जैन

(स्नातक द्वितीय वर्ष - दिल्ली विश्वविद्यालय), स्थाई पता- सेक्टर 19 (1) , हुड्डा , मकान नं-75, कैथल (हरियाणा) 136027.

ऋग्वैदिक काल में लोकतंत्र के पदचिह्न

चूंकि भारतीय समाज प्रारंभिक चरण में क़बीलाई स्वरुप में था इसलिए 'राजा' शब्द का प्रयोग 'जन' अर्थात समुदाय के मुखिया या सरदार' के रुप में किया जाता था जिसे 'जन' का विश्वास हासिल था तथा जो 'जन' का नेतृत्व करता था। निसंदेह अपने प्रारंभिक चरण में समाज सरदारी-व्यवस्था पर आधारित था जिसके सरदार को 'राजा या राजन्' कहा जाता था। इसी वजह से रोमिला थापर के शब्दों में कहें तो 'राजा' प्रमुख रुप से सेनानायक था। उसकी कुशलता बस्तियों की रक्षा तथा लूटपाट जीतने में ही थी; यह दोनों ही चीजें उसकी हैसियत के लिए आवश्यक थीं।[1]

परंतु पूर्व वैदिक काल में ही एक सुदृढ़ एवं जटिल प्रशासनिक व्यवस्था उभर चुकी थी जिसमें राजा निर्वाचित होता था। ऋग्वेद तथा अन्य वेदों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से इस प्रणाली के बारे में पता लगाया जा सकता है। सरदारी व्यवस्था में सरदार अथवा मुखिया का पद लोगों की श्रद्धा पर निर्भर करता है तथा उसके कर्तव्य भी सीमित होते हैं लेकिन वैदिक ग्रंथों में 'राजा' के विविध कर्तव्यों के साथ उसके चुनाव का भी वर्णन किया गया है। पूर्व वैदिक काल में राजा का मतलब राजतांत्रिक राज्य का राजा नहीं था जैसा कि कलांतर इसका प्रयोग हुआ।

'राजा या राजन्' की मूलधातु 'रंजन' है। "सो रंजतः ततो राजन्यो जायतः"[2] अर्थात राजा वही है जो प्रजा का रंजन करें। प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए राजा के कर्तव्यों का भी उल्लेख मिलता है।

मनुस्मृति के अनुसारः- "इंद्र की तरह राजा को अपने राष्ट्र की कामना को सुख की सामग्रियों द्वारा तृप्त करना चाहिए। सूर्य के समान राजा अपनी प्रजा से कर ग्रहण करें अर्थात जिस प्रकार सूर्य छोटे बड़े जलाशयों से उनको क्षुब्ध किए बिना अनुपात से वाष्प ग्रहण करता है उसी प्रकार राजा को अपनी प्रजा से छोटे बड़े के अनुपात से उनको पीड़ा दिए बिना कर ग्रहण करना चाहिए। (ऋग्वेद में कर के लिए 'बलि' शब्द का भी प्रयोग किया गया है परंतु यह स्वेच्छा से दी जाती थी)। वायु की तरह

राजा अपनी प्रजा के प्रत्येक प्राणी को जीवित रखने में सहायक हो। शत्रु-मित्र का भाव त्याग कर राजा अपराधियों को दंड दे। वरुण की तरह अपनी प्रजा को प्रसन्न करने वाला हो। अग्नि की तरह पापियों को दंड देने में तेजस्वी रहे। पृथ्वी की तरह राजा सब प्रकार के प्राणियों को समान रुप से धारण करें।[3]

इन सभी कर्तव्यों को निभाने हेतु एक सुयोग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी जिसको निर्वाचन के पश्चात राजा का पद प्रदान किया जाता था।

अथर्ववेद 3-4-7 :- "पच्यां खेतीर्वहुधा तिरुपासर्वाः संगत्य वरीयस्ते अजान् तास्त्या सर्ग संविदाना हयन्तु दशमीमुग्रमुमना वरोह"

"धर्म मार्ग ना त्यागने वाली, धन्य संपन्न, नाना प्रकार की सब प्रजाएं तेरे वरण करने योग्य, निर्वाचित होने वाले पद को नियत करती है।"

इससे ज्ञात होता है कि राजा का पद एक निर्वाचित पद था; इस पद के पदाधिकारी राजा का निर्वाचन प्रजा करती थी।

राजा के निर्वाचन तथा अन्य प्रशासनिक इकाइयों के बारे में जानकारी ग्रहण करने से पहले प्रारंभिक संस्थाओं के क्रमिक विकास को समझना आवश्यक है जिसकी परिणति राजा के निर्वाचित पद के रूप में हुई।

निर्वाचित राजा से पूर्व प्रारंभिक व्यवस्थाएं* : राजा के निर्वाचन के संबंध में हमें ऋग्वेद और अथर्ववेद में सभा एवं समिति जैसे संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। सभा एवं समिति के विवेचनात्मक अध्ययन से हम पाते हैं कि दोनों ही संस्थाओं की सरंचनात्मक व्यवस्था जटिल थी। अतः यह विदित है कि सभा और समिति का अस्तित्व अकस्मात् नहीं था अपितु राजनीतिक संस्थाओं के रूप में इनका विकास क्रमवार हुआ।

सबसे प्राचीन संस्था : विदथ : ऋग्वेद में 'विदथ' नाम की संस्था का उल्लेख 122 बार किया गया है। विदथ सबसे प्राचीन संस्था प्रतीत होती है। विदथ शब्द का अनुवाद 'मंडली' के रूप में किया जा सकता है। बस्ती के सभी लोग इसकी सदस्य होते थे जिनमें महिलाएं भी शामिल थीं तथा संभवत महत्वपूर्ण भी रहीं होंगी। ऋग्वेद में स्त्रियों की उपस्थिति का उल्लेख केवल एक बार ही हुआ है लेकिन 'ऋक्' और 'अथर्व' संहिताओं को मिलाकर ऐसे कम से कम 7 उल्लेख मिलते हैं जिनके अनुसार स्त्रियां विदथ में न केवल उपस्थित होती थीं अपितु वाद-विवाद में भी भाग लेती थीं।[4]

चूंकि प्रारंभिक आर्य समाज युद्ध के जरिए पशुधन तथा अन्य संसाधन प्राप्त करता था इसलिए विदथ का महत्वपूर्ण कार्य प्राप्त माल का सभी लोगों में समान बंटवारा करना होता था। विदथ में सामूहिक रूप से यज्ञ का आयोजन किया जाता था जिसमें पुरोहित मंत्रों का उच्चारण करता था तथा देवताओं का आह्वान किया जाता था। प्रारंभ में यही एकमात्र संस्था थी इसलिए विदथ में धार्मिक क्रियाकलापों के साथ-साथ सामाजिक कार्य भी किए जाते थे तथा सैन्य कार्य भी इसके ही अंतर्गत थे।

विदथ शब्द का अर्थ अस्पष्ट है या यूं कहें कि इसका प्रयोग ऋग्वेद में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। विदथ की मूल धातु अगर 'विद्' को माना जाए जिसका अर्थ 'वाद-विवाद', 'ज्ञान' या 'सभा' होता है जिसके अनुसार विदथ को एक ऐसी संस्था के रूप में देखा जा सकता है जहां लोग वाद-विवाद या विचार विमर्श के जरिए सर्वसहमति से निर्णय लेते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार विदथ 'विधा' से निकला है जिसका अर्थ है बांटना, वितरण या धर्मविधि (यज्ञ इत्यादि) करना।[5] के पी जायसवाल ने विदथ को सेना से भी जोड़ा है। इनमें से किसी एक अर्थ के बजाय सभी अर्थों को स्वीकार करना उचित होगा। विदथ को सबसे प्राचीन 'मूल संस्था' कहा जा सकता है जिसमें धार्मिक, सामाजिक तथा सैन्य कार्यों का सभी लोगों द्वारा एक साथ संपादन किया जाता था। यह आदिम समाज की जरूरतों को पूरा करती थी जब समाज में ना तो श्रम-विभाजन था और ना ही स्त्री पुरुष के बीच में भेद। इसमें सम्मिलित लोग साथ-साथ गाते, साथ-साथ प्रार्थना, साथ-साथ खेलते तथा साथ-साथ विचार विमर्श करते थे।

आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि अवस्था : धीरे-धीरे जब समाज का विस्तार हुआ तो हमें विदथ के अलावा दूसरी व्यवस्थाओं के भी चिन्ह मिलते हैं। "आहवनीय अवस्था" तथा "दक्षिणाग्नि अवस्था" राजनीतिक संस्थाओं के क्रमिक विकास में दूसरे चरण पर आतीं हैं।

आहवन का अर्थ होता है "चुनौती" देना। समाज में सर्वप्रथम 'कुटुंब' अर्थात परिवार बने और गृह के स्वामी को गृहपति कहा गया। ग्राम के सभी गृहपति एक साथ निर्णय लेते थे गृहपतियों की इस बैठक या सभा में विचार-विमर्श के पश्चात ही निर्णय लिए जाते थे। मतभेदों को दूर करने के लिए वादी प्रतिवादी अपने-अपने मत को पुष्ट करने के लिए एक दूसरे को चुनौती देते थे जिसके कारण इस अवस्था को "आहवनीय अवस्था" कहा गया।

आहवनीय अवस्था में गृहपतियों की बैठक को सभा का आरंभिक स्वरुप माना जा सकता है तथा इसे ग्राम-सभा के रूप में संबोधित किया जाना अनुचित नहीं होगा। राष्ट्रसभा या राज्यसभा (वेद इत्यादि में राज्यसभा के नाम से किसी सभा का उल्लेख नहीं है, केवल सभा का वर्णन है लेकिन गृहपतियों की बैठक से अलग इंगित करने के लिए उच्च स्तरीय सभा के लिए यदा-कदा राज्यसभा शब्द का प्रयोग किया जा सकता है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे) के विकास से पहले ग्रामसभा मौजूद थी और संभवत इसके समानांतर भी क्योंकि वैदिक संहिता में सभा संबंधी जो उल्लेख मिलते हैं उनसे भी अधिकांशतः सभा का 'ग्राम संस्था' होना सिद्ध है। एक स्थान पर सभा की वार्ता का विषय गौ और उसकी उपयोगिता है। ऋग्वेद की एक ऋचा में सभा को पासा और जुआ खेलने का जमाव कहा गया है।[6] समाज-विस्तार के आरंभिक चरण में प्रत्येक ग्राम अपना पृथक-पृथक प्रबंध करता था। जनमानस के विचारों पर निर्णय लेने के लिए प्रबंधकारिणी संस्था "ग्रामसभा" का उद्भव हुआ जो वाद-विवाद के पश्चात सर्वसम्मति से निर्णय देती थी। ग्राम-सभा "राज्यसभा" के समानांतर भी वजूद में रही।

समय के साथ समाज में अनेक कार्य और पेशे उभर कर आए तथा जनसंख्या में वृद्धि हुई। श्रम विभाजन के साथ ही समाज में जटिलताएं आईं। ऐसे में गृहपतियों के बीच मत-मतांतर एवं वाद-विवाद अधिक होने लगे और एकमत निर्णय लेना कठिन हो गया। अंततः मतभेदों का निपटारा करने का कार्य कुछ योग्य बुद्धिमान विद्वानों को सौंपा गया, इस अवस्था को 'दक्षिणाग्नि' अवस्था कहा गया।

दक्षिण का अर्थ 'योग्य, चतुर एवं ईमानदार' होता है तथा अग्नि का 'शुद्ध सत्य वाणी बोलने वाला पुरुष'। दक्षिणाग्नि ऐसे व्यक्तियों को कहा जाता था जो बुद्धिमान, चतुर तथा सत्य वाणी बोलने वाले होते थे। इन विद्वानों को समाज में सम्मान प्राप्त होता था तथा गृहपतियों से दक्षिणा (भेंट) भी मिलती थी। कालांतर में विद्वानों की संस्था को स्थाई बना दिया गया। विद्वान लोग अपने निर्णयों से समाज में व्यवस्था को बनाए रखते थे। वे ही समाज के नेता थे। अभी राज्य की उत्पत्ति नहीं हुई थी। जब भी किसी एक जन का किसी दूसरे से युद्ध होता था तो संभवत सरदार या मुखिया की सेनानायक के तौर पर नियुक्ति की जाती थी परंतु राजा का 'निर्वाचित' पद अभी अस्तित्व में नहीं आया था। जाहिर है कि समाज के विकास और विस्तार के साथ ही आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि अवस्था आगे चलकर एक अत्यधिक विस्तृत राजनीतिक संरचना के रूप में उभरकर प्रकट हुई जिसके शीर्ष पर जनकल्याण के आदर्श को प्रदर्शित करता "निर्वाचित राजा" होता था।

राजा का चुनाव :

प्रथम निर्वाचन : विश् और पंचप्रदिशः

अथर्ववेद के अनुसार - "त्वां विशे वृणतां राज्याय त्वमिमा प्रदिशः पंच देवीः।"

अर्थात राजा को चुनने वाले "विश् और पंचप्रदिश' थे। विश् अर्थात कई ग्रामों की संस्था; ग्राम से तात्पर्य पशुपालकों तथा चरवाहों के समुदाय से है। अतः विश् ऐसे लोगों का समूह था जो आर्थिक क्रियाकलापों में संलग्न थे। विद्वानों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन करता था (कृषक, पशुपालक, चरवाहे आदि)।

सर्वप्रथम विश् अर्थात आम लोगों द्वारा राजा का चुनाव होता था। इसके पश्चात राजा का निर्वाचन 'पंचप्रदिशों' द्वारा होता था। 'पंचप्रदिश' शब्द से ग्राम के प्रतिनिधि-पंचों का भाव विदित होता है। पंचप्रदिश ग्राम के प्रतिनिधियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। पंचप्रदिश ग्राम की समिति या संस्था थी तथा ग्रामणि इसके प्रधान।[7] पंचप्रदिश राजा का निर्वाचन करते थे। इनकी समानता आधुनिक ग्राम पंचायतों के साथ स्थापित की जा सकती है।

यजुर्वेद से विदित होता है कि निर्वाचन के समय चुनाव प्रचार भी होता होगा। एक मंत्र में प्रजा से कहा गया है कि "आप स्वराज्यों में स्थित हो, आप लोग निर्वाचन करने वाले हो, आप लोग राजा का निर्वाचन करें।"

द्वितीय निर्वाचनः सभा एवं समिति

विश् और पंचप्रदिश द्वारा निर्वाचन के पश्चात राजा "सभा" द्वारा चुना जाता था। सभा के सदस्य "राजानः" कहलाते थे (अथर्ववेद 3-29-1) । सभा के सदस्यों के लिए प्रयुक्त अन्य नाम "सभासद" था तथा "सभावती" के उल्लेख से विदित होता है कि स्त्रियां भी सभा का हिस्सा होती थीं। सभा के द्वारपाल को "सभापाल" कहा जाता था। सभा के अध्यक्ष को "सभापति "कहा जाता था।

वैदिक ग्रंथों के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि सभा 'प्रमुख या विद्वान लोगों' का समूह था (दक्षिणाग्नि अवस्था का विकास) जिसका प्रत्येक सदस्य निर्वाचित होता था। (उत्तर वैदिक काल में सभा कुलीन वर्ग के रूप में परिवर्तित हो गई) प्राचीन राजव्यवस्था में सभासदों की योग्यताओं एवं अर्हताओं पर पूर्णतया ध्यान दिया जाता था।[8] सभासदों का निर्वाचन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि अयोग्य व्यक्ति ना चुन लिया जाए क्योंकि ऋग्वेद 3-27-9 में कहा गया है कि "विद्वान ही अपनी धारणा; ज्ञान शक्ति और कर्म-सामर्थ्य के कारण निर्वाचन करने में सबसे योग्य हैं तथा इसलिए सबसे श्रेष्ठ होकर काम करें। वही सब पदार्थों और प्राणियों को अपने वश में धारण करता है और प्रजा उस पालक पिता को सभा रूप में धारण करती है और मानती है।" शास्त्रों द्वारा सभासदों की संख्या भी निश्चित कर दी गई थी।

संदर्भ :

1. रोमिला थापर "अर्ली इंडिया' पृष्ठ 120
2. संसद टीवी, डॉक्यूमेंट्री 'सुराज्य संहिता' एपिसोड-1
3. डॉ देवीदत्त शुक्ल, "प्राचीन भारत में जनतंत्र" पृष्ठ 61
4. श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका (vol-6 Issue-7 March 2019)
5. राजीव कुमार, "आर्यों की सबसे पुरानी जनसभाः विदथ
   यहां आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि अवस्था से संबंधित निष्कर्ष डॉक्टर देवीदत्त शुक्ल की पुस्तक "प्राचीन भारत में जनतंत्र" के अध्याय "आदि संस्थाएं" के अध्ययन पर आधारित है।
6. International Journal of Advanced Research and Development (vol. 3, Issue-2 (March 2018, Page -855-56)
7. डॉ देवीदत्त शुक्ल 'प्राचीन भारत में जनतंत्र' पृष्ठ 47
8. International Journal of Sanskrit Research (अनन्या) 2019 (118-114)

•